International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 04(II), October - December, 2022, pp. 237-242

वेद एवं महाभारतकालीन आश्रम व्यवस्था–समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. रेनू रानी शर्मा*

प्रस्तावना

मनुष्य की नैसर्गिक सामाजिक प्रवृत्ति और विचारशीलता को सुसंगठित रूप प्रदान करने के लिये मनुष्य की पूर्ण आयु को 100 वर्ष का मानते हुए उसे समान चार भागों में बाँटकर 25–25 वर्षों की अवधियाँ निश्चित कर के मानव जीवन में चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी थी। ये चारों आश्रम से ब्रह्मचर्याश्रम (शिक्षा प्राप्ति काल) गृहस्थाश्रम (स्नातक होने पर घरेलू उत्तरदायित्वों का काल) वानप्रस्थाश्रम (प्रौढ़ होने पर वनवासी जीवन) सन्यासाश्रम (निर्वृत्ति और त्यागपूर्ण जीवन)। ब्रह्मचर्याश्रम में नियम संयम रूपी योग सम्बन्धी व्रत का पालन करते हुए विद्या प्राप्ति के लक्ष्य को सावधान होकर पूर्ण करने के उपरान्त गृहस्थ आश्राम में प्रवेश करके पश्चाद्वर्ती आश्राम में प्राप्त की गयी को क्रियात्मक अथवा प्रयोगात्मक रूप प्रदान करते हुए धर्मपूर्वक अर्थ एवं काम का उपभोग करके शनैः शनैः मन को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त करते हुए वानप्रस्थाश्रम में विषयासक्ति का परित्याग करते हुए निर्लिप्त भाव से रहना तथा सन्यासाश्रम में निर्विकार रहकर मोक्ष प्राप्त करना, यही आश्रम धर्म के मूल संदेश हैं।

धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष, यही सदाचारी मनुष्य का लक्ष्य होता है जिनको आश्रमधर्म के पालन द्वारा सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। शान्तिपर्व के अनुसार मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए स्वयं भगवान ने आश्रमधर्म की व्यवस्था की है।

वेद में आश्रम व्यवस्था

यद्यपि आश्रम शब्द का उल्लेख वेदों में नहीं मिलता लेकिन आश्रम सम्बन्धी विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। ब्रह्मचारी शब्द ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में पाया जाता है। ब्रह्मचर्य की चर्चा तैत्तिरीय संहिता और भातपथ ब्राह्मण में हुयी हैं। ऋग्वेद में अग्नि को गृहपति कहा गया है। ऋग्वेंद में विवाह सूक्त में यह उल्लेख है कि पति को पत्नी गार्हपत्य के लिए ही दी।[3] इससे स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद में गृहस्थरूप में आश्रम की दूसरी अवस्था का भी ज्ञान था।

वेदों में वानप्रस्थ जैसी किसी अवस्था का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। ताण्ड्य महाब्राह्मण में वैखानस ऋषियों को इन्द्र का प्रिय कहा गया है।[4] वैखानस का तात्पर्य वानप्रस्थ से ही होगा। अतएव वानप्रस्थ आश्रम के ज्ञान का आभास भी वैदिक साहित्य से ही होता है।

चतुर्थ आश्रम सन्यास की जानकारी हमें यति एवं मुनि शब्दों से प्राप्त होती है। यति का उल्लेख ऋग्वेद[5] तैत्तिरीय संहिता[6] काठक संहिता[7] एतरेय ब्राह्मण[8] कौषीतकि उपनिषद्[9] अथर्ववेद[10] और ताण्ड्य महाब्राह्मण में हुआ है। विभिन्न सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि यति इन्द्र के शत्रु रूप में थे। उन्हें आर्यों ने इन्द्र की सहायता से समाप्त किया और उनके शरीर को श्रगालों के भोजन हेतु फेंक दिया। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गो.ग.द. सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल, हरियाणा।

जाकर यति इन्द्र के भक्त विदित होते हैं। संभवतः उन्होंने वैदिक संस्कृति को अपना लिया। ऋग्वेद में मुनियों का उल्लेख हुआ है जिन्हें इन्द्र का मित्र कहा गया है।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि अनार्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले साधुओं को यति तथा आर्यों के सन्यासियों को मुनि कहा जाता था।

चारों आश्रमों का एक साथ संकेत सर्वप्रथम एतरेय ब्राह्मण में हुआ है। यहाँ भी इन्हें अप्रचलित नामों यथा मल (गृहस्थाश्रम) अजिन (ब्रहमचर्याश्रम) श्मश्रूणि (वानप्रस्थ) तप (परिव्राजक अथवा सन्यासाश्रम) द्वारा उल्लिखित किया गया है।[4] एतरेय ब्राह्मण में इक्ष्वाकुवंशीय हरिश्चन्द्र के अपुत्र होने पर महर्षि नारद और पर्वत ऋषि द्वारा दस गाथाओं में पुत्र प्राप्ति की प्रशंसा की गयी जिससे स्वतः ही गृहस्थाश्रम का महत्व भी प्रतिपादित होता है छान्दोग्य उपनिषद में स्पष्ट संकेत है कि धर्म की तीन शाखाओं में से प्रथम यज्ञ–अध्ययन एवं दान गृहस्थाश्रम से सम्बद्ध है द्वितीय तप है– तप वानप्रस्थाश्रम से सम्बद्ध हैं।[5] ब्रहमचर्य का उल्लेख करते हुए उसके दो भेद बताये हैं। प्रथम– जो ब्रहमचारी अध्ययन की अवधि पर्यन्त गुरुकुल में वास करता है उसे उपकुर्वाण कहा गया है। द्वितीय – जो ब्रह्मचारी यावज्जीवन, गुरुकुल में ही निवास करने तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करने का निर्णय लेता है। उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है। चतुर्थ आश्रम को ब्रह्मसंस्था कहा गया है उससे अमृतत्व की प्राप्ति होती है[6] यज्ञ – दान – तप एवं ऋणों से मुक्ति विषयक आश्रम सम्बन्धी कार्यव्यापार मनुष्य को आत्मज्ञान कराने में सहायक होते हैं, जैसा कि वृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है'' उस आत्मा को ब्राह्मण वेदानुवचन यज्ञ–दान– तप और उपवास के द्वारा जानने की इच्छा करते हैं। इसी को ज्ञात करके मुनि होता है। इसी आत्मलोक की इच्छा करके सन्यास ग्रहण करते हैं[7] वृहदारण्यक उपनिषद में ही आत्मज्ञानी पुरुष की चर्चा करते हुए कहा गया है कि प्रजा (सन्तान) से हमें क्या प्रयोजन, हमारा यह आत्म ही लोक है। वे पुत्रैशणां, वित्तैशणां तथा लोकैषणां से उपर उठकर भिक्षाचर्य रहते थे।[8] श्वेताश्वेतर उपनिषद में ब्रह्मज्ञानी भवेता वेतर द्वारा आश्रम नियमों से उपर उठ चुके आत्मज्ञानियों को ज्ञान का पाठ पढ़ाया।

महाभारतकालीन आश्रम व्यवस्था

महाभारतकार ने भी आश्रम व्यवस्था की चारों अवस्थाओं पर समान रूप से बल दिया है।

- **ब्रह्मचर्याश्रम**

कुमारावस्था से ही ब्रहमचर्य के पालन पूर्वक विद्या एवं वेदों का अध्ययन ब्रह्मचर्याश्रम के मूलभूत तत्व थे। इस आश्रम के आवश्यक तत्वों का निर्देश करते हुए महाभारत में कहा गया है कि जगत का कल्याण करने वाले भगवान ब्रहमा ने पूर्वकाल में ही धर्म की रक्षा के लिए चार आश्रमों का निर्देश किया था। उनमें से ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुकुल वास को ही पहला आश्रम कहते हैं। उसमें रहने वाले ब्रह्मचारी को बाहर भीतर की शुद्धि वैदिक संस्कार तथा व्रत नियमों का पालन करते हुए अपने मन को वश में रखना चाहिये। सुबह और शाम सन्ध्योपासना, सूर्योपस्थान और अग्निहोत्र के द्वारा अग्निदेव की आराधना करनी चाहिये। तन्द्रा और आलस्य त्याग कर गुरु को प्रणाम करें और वेदों का अभ्यास तथा श्रवण से अपनी अन्तरात्मा को पवित्र करें। सुबह–शाम – दोपहर तीनों समय स्नान करें। ब्रह्मचर्य का पालन, अग्नि की उपासना और गुरु की सेवा करें। प्रतिदिन भिक्षा माँग कर लाये तथा भिक्षा में जो कुछ मिले उसे गुरु के चरणों में अर्पित दे अपनी अन्तरात्मा को भी गुरु के चरणों में न्योछावर कर दे। गुरु जी के संकेत एवं स्पष्ट शब्दों में दी गई आज्ञा का पालन करे। गुरु के कृपा प्रसाद से मिले स्वाध्याय में तत्पर हों। गुरु सोने, पर ही स्वयं सोने जाय और गुरु के उठने से पूर्व ही भाय्या का त्याग कर दे।[9] अध्ययन के आरम्भ में शुद्ध विनीत भाव से गुरु के चरण पकड़ कर प्रार्थना करनी चाहिये 'भगवन मुझे विद्या दान दीजिये'।[10] ब्रहमचर्य के प्रतिकूल तीक्ष्ण गंध रस का व्यवहार न करें। समस्त प्रलोभनों से स्वयं को मुक्त रखें, विशेषतः स्त्रियों से वार्तालाप का निषेध है। गुरु पत्नी के संबंध में यह नियम लागू नहीं है। चित्त में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न होने पर तत्क्षण कठिन प्रायश्चित का विघान है। शरीर व मन की सावधानी पूर्वक समस्त बुराइयों से रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार जीवन का प्रथम चतुर्थांश साधारणतः 24 वर्ष गुरु के घर रहने व गुरु सेवा द्वारा वेद के तत्व से अवगत होने का विधान है।[3]

ब्रह्मचर्य के चार चरण हैं। प्रथम– गुरुशुश्रूषा, वेदाध्ययन, अभिमान और क्रोध को जीतना। द्वितीय – आचार्य के प्रिय कर्मों का पूर्ण रूप से अनुष्ठान, आचार्य पत्नी व पुत्रों की यथोचित सेवा। आचार्य के अनुग्रह को स्मरण रखते हुए हमेशा उनके प्रति श्रद्धाभाव। चतुर्थ हैं विनीत भाव से निरभिमानी होकर गुरू को भक्तिपूर्वक दक्षिणा देना।[4]

ब्रह्मचर्य व्रत पालन के लाभों के सम्बन्ध में सनत्सुजात उपदेश में (344 वाँ अ०) कहा गया है कि देवताओं ने भी ब्रहमचर्य की शक्ति से ही देवत्व प्राप्त किया है। ऋषियों की ब्रह्मलोक प्राप्ति ब्रह्मचर्य के ही अधीन है।[5] ऋषियों में जो अलौकिक क्षमता पायी जाती है वह भी ब्रह्मचर्य का ही फल है। ब्रह्मचर्य मनुष्य को दीर्घजीवी बनाता है। जो नैष्ठिक अर्थात मृत्युपर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करते हैं उन पर पितरों का कोई ऋण नहीं रहता।[6] ब्रह्मचारी गुरु की अनुमति से उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दान द्वारा व्रत का उद्यापन करके गुरु का आशीर्वाद लेकर घर लौट जाते थे। इसी का नाम समावर्तन था।[7]

- **स्नातक**

समावर्तन के बाद गृहस्थ होने के लिए तैयार, ब्रहमचारी को स्नातक कहा जाता था। स्नातक के तीन प्रकार हैं– विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्याव्रत स्नातक। अल्पकाल में जो एक वेद का अध्ययन करके गुरु के घर से लौट आते थे। उन्हें विद्यास्नातक कहा जाता था। जो गुरु के पास बारह वर्ष तक सिर्फ व्रत का पालन करते थे उन्हें व्रतस्नातक तथा जो विद्या एवं व्रत दोनों का पालन करते थे। उन्हे विद्याव्रतस्नातक कहा जाता था।

- **गृहस्थाश्रम**

जीवन का द्वितीय भाग गृहस्थ के रूप में व्यतीत करने का विधान है। गुरु गृह से समावर्तन के उपरान्त ब्रहमचारी को शुभलक्षणा पत्नी ग्रहण कर विवाह करना चाहिये तथा यथाविधि गृहस्थधर्म का पालन करना चाहिये। गृहस्थ की चार प्रकार की जीविकाऐं थीं – कुशूलधान्य –प्रचुरधन का संचय, कुंभधान्य– अल्पधन का संचय करना तथा कापोती वृत्ति अर्थात कपोत की तरह से खेत से धान्य कण बीन कर उन्हीं के द्वारा जीविकोपार्जन करना। इसे उच्छवृत्ति भी कहा गया है ये वृत्तियाँ क्रमशः एक दूसरे से श्रेश्ठ हैं।[9]

शान्तिपर्व में भिन्न भिन्न स्थानों पर गृहस्थाश्रम धर्म विषयक वर्णन हुआ है जहाँ गृहस्थ के समस्त कर्तव्यों को व्रत कहा गया है। खाद्य संग्रह केवल अपने उद्देश्य से नहीं करना चाहिये। यज्ञ के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से प्राणि हिंसा नहीं करनी चाहिये। दिन में, संध्या के बाद गोधूलि के समय सोना नहीं चाहिये। केवल एक बार दिन में तथा एक बार रात्रि में भोजन करना चाहिये। मात–पिता–पत्नी–पुत्र–भृत्य तथा अतिथियों के बाद भोजन करना। कुलोचित धर्म में आस्था रखते हुए उसी को जीविका का साधन बनाना[30] उत्तम उपायों से धनोपार्जन करके उसके द्वारा देवता, अतिथि तथा पोष्यवर्ग की सेवा करना व किसी अन्य के धन पर लोभ न करना आदि नियम गृहस्थ के लिये आवश्यक हैं।

गृहस्थ के लिए प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने का विधान है। अध्ययन–अध्यापन नामक ब्रह्मयज्ञ, तर्पण नामक पितृयज्ञ, अग्नि में मन्त्रोच्चारण पूर्वक देवयज्ञ, बलि अर्थात सर्वभूत उद्देश्य से भूतयज्ञ तथा अतिथिसत्कार पूर्वक नृयज्ञ।[3]

श्री – वासव संवाद में एश्वर्य लाभ के लिए गृहस्थ के आचरण योग्य उत्तम कर्म यथा अपने धर्म का पालन, धैर्यशीलता, दान, अध्ययन यज्ञ देवताओं व पितरों की पूजा गुरु व अतिथिसत्कार, सत्यवादिता, श्रद्धा, असूया, अनहंकार, जितेन्द्रियत्व आदि प्रमुख हैंङ गृहस्थाश्रम में रहकर ही देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण से मुक्त हो सकता है।[33] अनेक सदाचारों का वर्णन भी मिलता है जैसे राजपथ पर, गौशाला में तथा धान के खेत में मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये। शौच व आचमन एकान्त में करने चाहिये। देवार्चना व पितृतर्पण नित्य करने चाहिये। सूर्योदय से पूर्व शय्या त्याग देनी चाहिए। हाथ पाँव मुँह अच्छी

तरह धो कर पूर्वाभिमुख होकर भोजन करना चाहिये। यज्ञ शाला, देवालय, वृष, ब्राह्मण आदि की प्रतिदिन प्रदक्षिणा करनी चाहिए।[34] सागर जिस तरह समस्त नदियों का आश्रय है उसी प्रकार गृहस्थ भी सब का आश्रय हैं।

वानप्रस्थ

जीवन के तृतीय भाग में वानप्रस्थ सम्बन्धी आश्रम धर्मो के पालन में सर्वप्रथम बात यह है कि शरीर में वृद्धावस्था की सूचना मिलते ही गृहस्य को सम्पत्ति आदि पुत्र के हाथों में सौंपकर संसार से विमुख होकर जीवन यापन करना चाहिये। ईश्वर मनन में समय बिताने के लिए घर छोड़कर वन में रहना पड़ता है इसलिए इस आश्रम का नाम वानप्रस्थ है।[36] पत्नी भी यदि पति के साथ वन में जाने को इच्छुक हो तो पत्नी को साथ लेकर गृहस्थ वन की ओर प्रस्थान करे नहीं तो पत्नी को पुत्रादि के पास छोड़ जायें।[37] वानप्रस्थी उपनिषदों व आरण्यकों का अध्ययन करें।[37] तीर्थ अथवा नदी के उद्गम जैसे शान्त क्षेत्र में जाकर तपस्या करें। वन में उत्पन्न कंद मूल, फल, शुष्क पत्र व औषधि वानप्रस्थी का भोजन तथा कास कुश, चर्म एवं वल्कल ही उनके वस्त्र होते थे। श्मश्रु कर्तन उनके लिए निषिद्ध था। एकमात्र धर्माचरण के लिए ही वे शरीरधारण करते थे। सर्वभूत में मैत्री रखना उनका कर्तव्य था। यथाकाल स्नान आदि से निवृत होकर अग्निहोत्र एवं यज्ञानुष्ठान करना, समिधा, कुशा एवं पुष्प आदि का संग्रह करना एवं परमतत्व से साक्षात्कार के अनुकूल चिन्ता में निमग्न होकर काल यापन करना ही वानप्रस्थ धर्म है। महाभारत में धृतराष्ट्र, गांधारी, कुन्ती, विदुर व संजय के वानप्रस्थ ग्रहण का चित्र आश्रमवासिक पर्व में चित्रित हुआ है।

- **सन्यासाश्रम**

जीवन के अन्तिम भाग में वानप्रस्थ का कालयापन करने के बाद सन्यास ग्रहण करने का विधान है। शरीर जब नितान्त जराग्रस्त हो, नाना प्रकार की व्याधियों से आक्रान्त हो, उस वक्त प्राजापत्य का अनुष्ठान करके सब कुछ त्यागने का विधान है। शास्त्रीय विधान में विहित कर्म का त्याग करना ही सन्यास है। सन्यास आश्रम में स्त्री, पुत्र, परिजन किसी को भी साथ नहीं रखा जा सकता। केश दाढ़ी मूछ आदि का भी मुण्डन करने का नियम है। विधिपूर्वक अग्नि का परित्याग करके थोड़े से उदरान्न के लिए सर्वत्यागी सन्यासी को गृहस्थ से भिक्षा लेनी चाहिये। भिक्षापात्र और वल्कल वस्त्र ये दो वस्तुएँ ही उसके लिए प्रयोजनीय हैं। उनका निर्दिष्ट वास स्थान नहीं होता, मान अपमान दोनों उनके लिए समान हैं। एकमात्र ईश्वर चिन्तन के अलावा और सब विषयों के प्रति उदासीनता ही सन्यासी का यथार्थ लक्षण है।[38] सभी प्राणियों के प्रति समताभाव व मैत्री सन्यासी के ह्रदय में सदा रहनी चाहिये। आत्मचिन्तन के साथ साथ सन्यासी को सर्वभूत के कल्याण की कामना करनी चाहिये। ह्रदय यदि अपवित्र हो तो दंडधारण, मुंडन, उपवास, अग्निहोत्र, ब्रह्मचर्य वनवास आदि सब कुछ निष्फल हो जाता है।[39]

सन्यासियों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है कुटीचक सन्यासी– ये एक ही जगह बैठकर ईश्वर चिन्तन में लीन रहते हैं। अपने स्त्री–पुत्रादि से भी भिक्षा ग्रहण करने में इन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। वहूदक सन्यासी– सत्यनिष्ठ ब्राह्मण गृहस्थ से भिक्षा लेते हैं दंड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत, शिखा, काषायवस्त्र का परित्याग नहीं करते। हंस सन्यासी– शिखा आदि रखते हैं पर किसी भी स्थान पर एक रात्रि से अधिक व्यतीत नहीं करते। ये केवल एक दंड धारण करते हैं। परमहंस सन्यासी–ये समस्त विधि निषेधों से ऊपर होते हैं। इन्हें शौच–अशौच का विचार न हो तो कोई बात नहीं। सत्व रजस् और तमस ये तीनों गुण इनकी वश्यता स्वीकार लेते हैं। ये निस्त्रैगुण्य होते हैं।[40] शास्त्रानुसार सन्यासाश्रम के लिए विहित धर्म के पालन का फल ब्रह्मतत्व की प्राप्ति है।

सन्दर्भ

1. पूर्वमेव भगवताब्रह्मणा लोकहितमनुतिष्ठता धर्मसंरक्षणार्थम् आश्रमाच्चत्वारोऽभिनिर्दिष्टा।। शान्तिपर्व 91.8।।
2. ऋ0 2.1. 2
3. ऋ० 10.85.36

4. ताण्ड्य 13.4.7
5. ऋ० 8.3.9
6. तैत्तिरीय सं. 6.2.7.5
7. काठक संहिता 8.5
8. एतरेय ब्रा. 35.2
9. कौषीतकि उपनिषद् 3.1
10. अथर्ववेद 2.5.3
11. ताण्ड्य ब्रा0 8.1.4
12. ऋग्वेद – 10.126.2, 136.4
13. ऋग्वेद– 8.17.14
14. किं नु मलं किमजिनं, किमु भमश्रूणि किं तपः। पुत्रं ब्राह्मण इच्छध्वं, स वै लोकोऽवदावदः।। ऐ0 ब्रा0 33. 11।।
15. छान्दोग्य उप0 2.23.1
16. त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः। तप एव द्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्य कुलवासी ..... छा० उ0 2.23।।
17. तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा ऽनाशकेन एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति..... वृहदा0 उप0 4.4।।
18. एतद्वयस्य पूर्वे विद्वांसः प्रजा न कामयन्ते, किं प्रजा करिण्यामो मेशां नोऽयमात्मा अयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च, वित्तैषणायाश्च, लोकेषणायाश्च व्युथायाय भिक्षाचर्यं चरन्ति। वृ0उप0 4.4.
19. जपन्यशायी पूर्वं .....कर्मसु कोविदः।। शा०प० 241–18।।
20. अभिवाद्य गुरुं ब्रूपादधीष्व ..... चापिकृतं मया।। वही 241–23।।
21. यांस्तु गन्धान सरसान वा ब्रह्मचारी न सेवते।। वहीं 241– 25।।
22. ब्रह्मचारी व्रतं नित्यं दीक्षापरो वशी .....। शा.प० 61.19–21।।
23. वेदव्रतोपवासेन ..... समावर्ते द्पथ्यविधि।। वही – 241.29–29।।
24. विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या .....।। उद्योग 44.2–15।।
25. ब्रह्मचर्पेण वै लोकान् जयन्ति परमर्षयः।। शा0 प0 241.6।।
26. अष्टावक्र संवाद। अनुशासन पर्व 18, 20 अध्याय।।
27. गुरुवे दक्षिणां दत्वा समा वर्तेदयथा विधि।। भाा0 प0 191.10।।
28. वेदव्रतोपवासेन चतुर्थो चायुषो गते।। शा.प. 241–29।।
29. गृहस्थ वृत्तय चैव चतस्त्रः कविभिः स्मृताः। कुशूलधान्यः प्रथमः कुंभधान्यस्त्वनन्तरम्।। इत्यादि शा0 प0 242–23।।
30. शा.प० 61 वाँ अध्याय, 191 वाँ अध्याय, 221 वाँ अध्याय
31. प–चमहायज्ञास्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमी। तस्य नायं च परो लोको भवति धर्मतः।। शा0प0 146.7।।
32. स्वधर्ममनुतिष्ठत्सु ..... सतत्वेषु निरतायहम्।। भाा0प0 226–29 –49

33. ऋणे चतुभिः संयुक्ता ..... ।। आदि। 20.17–22।।ऋणमुन्मुच्य देवानामृषिणां च तथैव च।। आदि 219.11–14।।
34. शा0प0 193 वाँ अध्याय
35. भा0प0 268.6, 295–39
36. तृतीयमाक्षुषो भाग वानप्रस्थाश्रमे वसेत्।। शा.प. 243.5, उद्यो0 37–39।।
37. तत्रारण्यक शास्त्राणि ..... गच्छत्यक्षरसात्मताम्।। शा० 61–5।।
38. शा० प० 244 वाँ अध्याय
39. सर्वाण्येतानि मिथ्या सूर्यदि भावो न निर्मलः।। वनपर्व–199–97।।
40. चतुर्विद्या भिक्षवस्ते कुटीचक वहूदकौ। हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः।। अनुशासन पर्व0 141–89

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद संहिता वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1933–46 (सायण भाष्य सहित)
2. तैत्तिरीय संहिता, वैदिक संशोधन मण्डल 1971–81 (भट्टभास्कर, सायणभाष्य) पूना
3. अथर्ववेद संहिता विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च 1961 (सायण भाष्य) इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर
4. एतरेय ब्राहमण तारा प्रिन्टिंग वर्क्स 1980 (सायण भाष्य सहित)
5. ताण्ड्य ब्राह्मण चौखम्बा संस्कृत सीरिज, 1938 (सायण भाष्य सहित) वाराणसी
6. वृहदारण्यक उपनिषद अद्वैत आश्रम 1934 (व्याख्या– शंकराचार्य अनु0 महादेवानन्द) कलकत्ता
7. छान्दोग्योपनिषद् श्री कैलाश आश्रम शताब्दी 1979 (सम्पा० डा० उमेशानन्द शास्त्री) समारोह महासमिति, मुनि की रेती ऋशिकेश
8. कौशीतकि उपनिशद चौखम्बा संस्कृत सीरीज 1967 ई0 (व्याख्याकार – भांकरानन्द) वाराणसी
9. महाभारत 24 भाग भण्डारकर ओरिएन्ट कृष्णाद्वैपायन व्यास रिसर्च इन्स्टीट्यूट् पूना सम्पा. पी. एस. सुकथांकर एस. के. बेलवेलकर पी० एल0 वैद्य

❖◆❖